**दशरथ, 6 साल**
बदन ऐंठ गया. बोल नहीं पाता और शोर करता रहता है. परिजन कर्जदार हो गए.

विकलांग बच्चों की तकलीफों में इस मामले में असर एक जैसा है. इसके अलावा 'विकलांगता निर्धारण या आकलन' की प्रक्रिया में भी काफी सुधार की जरूरत है.

बहरहाल, इसमें शक नहीं कि विकलांग राहत राशि ने बहुत सारे पीड़ित परिवारों की जिंदगी की दुश्वारियां कम करने में अहम भूमिका निभाई है. नोएडा स्थित एक गैर-सरकारी संगठन एक्शन फार पीस, प्रॉसपेरिटी ऐंड लिबर्टी (एपीपीएल) ने पिछले दिनों गोरखपुर, महाराजगंज और कुशीनगर जैसे इंसेफेलाइटिस की मार से बुरी तरह प्रभावित जिलों में कराए गए एक अध्ययन में पाया कि बड़ी संख्या में लोगों ने इस राशि से अपने कर्ज अदा किए और आगे की दवाएं खरीदीं. एपीपीएल के कार्यकारी न्यासी डॉ. ए.के. श्रीवास्तव कहते हैं, ''इस अध्ययन का उद्देश्य इंसेफेलाइटिस से हुए विकलांगों तथा उनके परिजनों की स्थितियों-परिस्थितियों का जायजा लेना तथा पुनर्वास के लिए आवश्यक जरूरतों की पहचान करना था पर नतीजे हमारे अनुमान से ज्यादा कष्टप्रद निकले'' (देखें बॉक्स). इस अध्ययन दल के सदस्य नरेंद्र मिश्र और डॉ. संजय श्रीवास्तव के मुताबिक, महाराजगंज, कुशीनगर और गोरखपुर के मुख्य चिकित्साधिकारियों की ओर से तैयार विकलांगों की सूची में से संख्यात्मक एवं क्षेत्रात्मक आधार पर चुने गए नमूनों के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आया कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में अभी भी झोलाछाप डॉक्टर ही 'जीवन रेखा' के बतौर काम कर रहे हैं. मिश्र कहते हैं, ''इसकी वजह सिर्फ प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की बदहाली नहीं है बल्कि झोलाछाप डॉक्टरों की 'उपलब्धता' और 'बिना पैसा लिए इलाज शुरू कर देने जैसी बड़ी सहूलियत भी है.'' इस अध्ययन के प्रारूपकारों में से एक डॉ. दिनेश सिंह कहते हैं, ''सरकारें और अदालतें ऐसे डॉक्टरों को समाप्त करना चाहती हैं जिसके लिए तर्क भी दिए जाते हैं, लेकिन व्यावहारिकता का तकाजा है कि जब तक गांवों में विश्वसनीय और सदैव सुलभ स्वास्थ्य ढांचा खड़ा हो जाता, तब तक इन्हें ही ज्ञान और उपकरणों से लैस किया जाना चाहिए.''

इस अध्ययन से एक और तस्वीर उभरती है और वह यह कि इंसेफेलाइटिस विकलांगों के घरों में कष्ट ने स्थायी बसेरा बना लिया है. महंगी दवाओं के बावजूद कोई खास फायदा न होने से उनमें मानसिक तनाव भी बढ़ रहे हैं.

महाराजगंज के लक्ष्मीपुर इलाके के शंभू चौधरी मजदूरी करके कमाए गए 1,200 रु. में अपने सात बच्चों का भरण-पोषण किसी तरह कर लिया करते थे, पर छह वर्षीय बेटे दशरथ की विकलांगता ने उन्हें कहीं का नहीं छोड़ा है. सिर और हाथ-पैर टेढ़े हो गए हैं, जिसके चलते वह हमेशा चिल्लाता रहता है. शंभू को हर महीने दवाओं पर खर्च होने वाले 700 रु. के लिए खेत गिरवी रखना पड़ा और ब्याज पर कर्ज लेना पड़ा. राहत राशि की पूरी रकम झौंक देने के बावजूद उन पर अभी 4,000 रु. का कर्ज बाकी है.

कई परिवारों ने तो इसी के चलते अब दवाएं भी बंद कर दी हैं और राहत राशि से 'भविष्य की आशंकाएं' दूर कर रहे हैं. गोरखपुर के पिपराइच निवासी विनोद यादव ने बेटी का इलाज कराने की बजाए 20,000 रु. सावधि जमा खाते में डाल दिए और 10,000 रु. में एक भैंस खरीद ली. उनका दर्द सुनिए, ''20,000 रु. तो चेयरमैन के भाई ने राहत दिलाने में घूस ले लिए. बचे 30,000 रु. इसकी (बेटी की) बीमारी तो अब ठीक होगी नहीं. बाकी बच्चों को भी तो जिलाना है.''

कंचनपुर की गुड्डी के पिता रामानंद ने भी अब इलाज का जिम्मा 'सोखा' पर छोड़ 30,000 रु. सावधि जमा खाते में डाल दिए हैं.'' मिश्र कहते हैं, ''जाहिरा तौर पर यह क्रूर फैसला लगता है, मगर बड़े परिवारों ओर छोटे आर्थिक आधारों वाले इन घरों में परिस्थितियां बेहद खराब हैं.''

इस अध्ययन के कुछ निष्कर्ष इलाके के कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचों को भी गुनाहगार की कोटि में खड़ा करते हैं. मसलन, शौच आदि के लिए खेतों या जलजमाव वाले क्षेत्रों में महिलाएं इस वजह से भी जाती हैं क्योंकि यही अवधि और यात्रा उनका वह 'स्पेस' है जिसमें वे एक-दूसरे से खुलकर अपना सुख-दुख बांटती हैं.

श्रीवास्तव कहते हैं, ''इस अध्ययन से कम-से-कम एक बात जरूर उभरती है और वह यह कि खुद सरकार को इंसेफेलाइटिस विकलांगों की स्थितियों-परिस्थितियों पर एक व्यापक अध्ययन कराना चाहिए. तभी शायद उसकी राहत नीति का चेहरा व्यावहारिक बन सकेगा.'' क्या सरकार इसे सुन रही है?

—कुमार हर्ष

## अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष

- **सत्तर फीसदी शिकार 4 से 10 साल की उम्र के बच्चे जिनके माता-पिता की मासिक आमदनी 1,000-2.000 रु. प्रतिमाह के बीच है. जाहिर है, खराब खानपान के चलते प्रतिरक्षण तंत्र कमजोर.**
- **पचास फीसदी से ज्यादा का निवास धान के खेतों, जल जमाव वाले क्षेत्रों या सुअरबाड़ों के पास है जो इंसेफेलाइटिस के विषाणुओं के पनपने के स्थान हैं**
- **इनमें से 93 फीसदी शिकार होने से पहले रोग के बारे में नहीं जानते थे. मतलब यह कि ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता कार्यक्रम ठीक से नहीं चल रहे.**
- **61 फीसदी विकलांगों को किसी प्रकार की फिजियोथैरेपी नहीं मिली.**
- **80 फीसदी से ज्यादा लोगों को पहली चिकित्सकीय मदद झोलाछाप डॉक्टरों से ही मिली यानी सरकारें और अदालत भले ही उन्हें पसंद न करती हों मगर ग्रामीण जनता के लिए अब भी वही पहला सहारा.**
- **85 प्रतिशत मामलों में बच्चों की विकलांगता के चलते पूरे परिवार पर बुरा असर. आर्थिक, शारीरिक और मानसिक तनाव बढ़े.**
- **78 फीसदी पीड़ितों के परिजनों के मुताबिक, कर्ज के चलते कई रिश्तेदारों ने मुंह मोड़ लिया.**
- **47 फीसदी लोगों ने विकलांग सहायता राशि का उपयोग अपने कर्जे चुकाने में किया.**